ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 255-258
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

अभिन्ननिमित्तोपादानकारणतावाद–परिवाद

त्रिपुरारी कुमार ठाकुर
असि. प्रोफेसर – संस्कृत विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुदिष्टपुरी, रानीगंज–बलिया (उ0प्र0) भारत।
Received- 21.12.2019, Revised- 24.12.2019, Accepted - 28.12.2019 E-mail: rahulsagar85@gmail.com

सारांश : *भारतीय दर्शन परम्परा में कार्यकारण सिद्धान्त सर्वाधिक विसंवादों का विषय रहा है। चिन्तक–प्रस्थानिकों ने स्वमतसम्मत कारणों व उनकी संख्याओं को आत्मसात् किया है। सामान्यतः निमित्तकारण तथा उपादानकारण को किसी न किसी रूप में सभी ने स्वीकार किया है। तदनुरूप अद्वैत वेदान्त में भी निमित्तकारण तथा उपादानकारण को स्वीकार किया गया है, लेकिन भिन्न स्वरुपतया।*

प्रश्न यह समुपस्थित होता है कि ब्रह्म में जगत् की कौन सी कारणता विवक्षित है? 'क्या ब्रह्म केवल जगत् के प्रति निमित्तकारण है या निमित्तोपादान कारण? '

उक्त संशय की स्थिति में पूर्वपक्ष का मत है कि ब्रह्म केवल निमित्तकारण है, क्योंकि श्रुति में ब्रह्म को ईक्षणपूर्वक कर्त्तृत्व का श्रवण है'।

कुंजी शब्द– भारतीय दर्शन, परम्परा, कार्यकरण, विसंवादों, चिन्तक, प्रस्थानिकों, स्वमतसम्मत, आत्मसात्, निमित्तकारण।

जगत् के प्रति ब्रह्म के कारणभाव का ज्ञान हमें श्रुति से ज्ञात होता है और उन श्रुतियों में ब्रह्म की ईक्षणता 'स ईक्षांचक्रे', 'स प्राणमसृजत' – को भी प्रतिपादित किया गया है। लोक व्यवहार में ईक्षणपूर्वक कर्तृत्व केवल निमित्तकारण भूत कुलाल आदि में ही देखी जाती है, उपादानकारणभूत मृतिका आदि में नहीं देखी जाती है, अतः ब्रह्म केवल निमित्त कारण ही है।

आचार्य वाचस्पति मिश्र ने 'शंकर' को पुष्ट करते हुए तथा पूर्वपक्ष की स्थापना न्यायदर्शन के 'परिशेष्य' के माध्यम से करते हैं कि 'प्रसक्त बह्मगत उपादानकारणता का प्रतिशेध हो जाने पर अन्य किसी वस्तु में उपादानता प्रसक्त नहीं, परिशेषतः सांख्य सम्मत प्रधन (प्रकृति) में उपादानता पर्यवसित होती है'।

पूर्वपक्ष के उक्त मत का खण्डन करते हुए सिद्धान्तपक्ष का कथन है कि 'ब्रह्म को उपादानकारण भी मानना चाहिए, न केवल निमित्तकारण मात्रा, क्योंकि इससे प्रतिज्ञा और दृष्टान्त का अनुपरोध है'।

अर्थात् ब्रह्म उपादानकारण है तथा सूत्रागत 'च' शब्द के ग्रहण से वह निमित्तकारण भी है। ब्रह्म केवल न केवल उपादानकारण है और न ही केवल निमित्तकारण। उभयविध कारणता में ही प्रतिज्ञा और दृष्टान्त का सामंजस्य स्थापित हो सकता है, न कि केवल एकविध कारणता में।

प्रतिज्ञा और दृष्टान्त को स्पष्ट करते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि 'तुमने गुरु से वह उपदेश पूछा? जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है, मनन किया हुआ मनन हो जाता है, और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है' इस प्रतिज्ञा से तथा 'हे सोम्य! जैसे एक मृत्तिकापिण्ड से सब मृत्तिकाओं के विकार का विज्ञान हो जाता है, विकार नाममात्रा है, जिसका आरम्भ केवल वाणी से होता है, मृत्तिका ही सत्य है' – इस दृष्टान्त का सामंजस्य ब्रह्म की उभयविध कारणता मानने पर ही स्थापित होता है।

आशय यह है कि–एक ब्रह्म का ज्ञान होने पर सभी का विज्ञान हो जाता है, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। यह तभी उपपन्न हो सकता है जबकि ब्रह्म सभी कार्यों का उपादानकारण हो, ब्रह्म से भिन्न कोई कार्य ही न हो। यह सर्वविज्ञान उपादानकारण का विज्ञान होने पर सम्भव है, क्योंकि कार्य उपादानकारण से अभिन्न माना जाता है। निमित्तकारण से कार्य अभिन्न नहीं होता, क्योंकि लोक में महल बनाने वाले महल से भिन्न देखने में आता है। इसी आशय को शंकर ने 'तत्रा चैकेन वितेन' पंक्ति के माध्यम से कहा है। इसी आशय की स्पष्टता में वृत्तिकार ने प्रतिज्ञा और दृष्टान्त के मध्य अनुपरोध को स्थापित किया है। ब्रह्म यदि केवल निमित्तकारण हो, तो सभी कार्यों के ब्रह्म से भिन्न होने से एक विज्ञान से सर्वविज्ञान का प्रतिपादन कैसे किया जा सकता है।

उक्त विषय में भामतीकार का मत है कि 'प्रतिज्ञा और दृष्टान्त वाक्य अद्वैतपरक ही हैं, अतः समस्त उपादेयभूत जगत् के ज्ञान उसके उपादानभूत ब्रह्म के ज्ञान से होना न्याय सिद्ध है। निमित्तकारण तो अपने कार्य प्रपंच से अत्यन्त भिन्न होता है, अतः उसके ज्ञान से समस्त कार्य का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म जगत् का उपादान कारण सिद्ध होता है'।

वृत्तिकार का कथन है कि– 'ब्रह्म से भिन्न और कोई पदार्थ जगत् का निमित्तकारण है– यह कहना युक्ति–युक्त नहीं, क्योंकि उक्त प्रतिज्ञा और दृष्टान्त के अनुरोध पर वैसा मानना सम्भव नहीं है।

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

पूर्व में जो यह शंका की गयी कि 'ईक्षणपूर्वक कर्त्तृत्व केवल निमित्त कारणभूत कुलाल आदि में ही देखी जाती है यह उचित नहीं है क्योंकि आगमगम्यमान अर्थ होने से। जिस प्रकार ब्रह्म की ईक्षणता श्रुति प्रतिपादित करती है उसी प्रकार ईक्षणता सहित प्रकृतित्व (उपादानता) भी प्रतिपादित करती है– यह दिखाया आ चुका है'।

एवंच 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'– इस श्रुति में 'यतः' पद पंचम्यन्त है। 'जनिकर्तुः प्रकृति' इस पाणिनीय सूत्रा के अनुसार जनि (उत्पत्ति) के कर्ता (जायमान वस्तु मात्रा) के उपादान कारण (प्रकृति) की अपादान संज्ञा की गई और 'अपादाने पश्चमी' इस सूत्रा से उस पश्चमी का विधन हुआ है, अतः प्रकृति के अर्थ में 'यत्' पद पर्यवसित होता है। अतः व्याकरण के अनुसार भी ब्रह्म जगत् की (उपादानकारण) ही अधिगत होता है।

ब्रह्म की अभिन्ननिमित्तोपादानता को सिद्ध करते हुए वृत्तिकार एक अन्य श्रुति की सामंजस्यता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'अभिध्यान के उपदेश से भी ब्रह्म ही उपादान तथा निमित्त उभयविध कारण सिद्ध होता है। उसने ईक्षण किया', 'मैं बहुत हो जाउफँ, प्रजारूप में उत्पन्न होउ'– यहाँ प्रत्यगात्मविषयक बहुत होने के संकल्प से ब्रह्म का प्रकृति–उपादानकारण होना सिद्ध होता है।

अतः सृष्टि संकल्पना का उपदेश ब्रह्म में कर्त्तृत्व और प्रकृतित्व दोनों का ज्ञान कराता है। वाचस्पतिमिश्र ने सूत्रागत 'अभिध्या' को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'अनागत वस्तु विषयक इच्छा या संकल्प का नाम अभिध्या है। इस इच्छा के द्वारा निमित्तकारणता प्रदर्शित की गई है और 'बहु स्याम्'– के द्वारा ब्रह्म में स्वोपादानक बहुकार्यसर्जन के द्वारा उपादानकारणता सूचित की गई है।

ब्रह्म उपादान कारण है, इस विषय में एक हेतु को दिखाते हुए वृत्तिकार कहते हैं कि– छान्दोग्यश्रुतिवाक्य में आकाशशब्द से साक्षात् ब्रह्म का ग्रहण करके जगत् की उत्पत्ति और प्रलय दोनों कहे गए हैं। तद्यथा ''ये सभी भूत आकाश से ही उत्पन्न और आकाश में ही लीन हो जाते हैं।''

आशय यह है कि श्रुतिगत 'आकाशादेव का अर्थ ब्रह्मण एव में पर्यवासित किया गया है। यद्यपि निमित्तकारण से कार्यों की उत्पत्ति देखी जाती है परंच निमित्त कारणों में कार्यों का पर्यवसान नहीं देखा जाता है। कार्यों का पर्यवसान अर्थात् लीन होना केवल उपादान कारणों में ही देखा जाता है। अतः उक्त छान्दोग्यश्रुति ब्रह्म को अपने कथ्य से ब्रह्म को उपादानकारण होना सिद्ध करती है।

इसी तथ्य को आचार्य शंकर एक प्रसिद्धि के माध्यम से कहते हैं कि 'जो वस्तु जिससे उत्पन्न होता है और जिसमें उस वस्तु का पुनः प्रलीन होता है, वह, उस वस्तु का उपादानकारण माना जाता है, यह प्रसिद्ध है, जैसे– व्रीहियवादियों का उपादानकारण पृथिवी को माना जाता है।'

छान्दोग्योपनिषद् का यह श्रुतिवाक्य 'सर्वाणि ह इमानि भूतानि आकाशादेव.. ' ब्रह्म में जगत् की उपादानकारणता का अवधरण करता हुआ अन्ययोग व्यवच्छेदक एवकार के द्वारा आकाश (ब्रह्म) से भिन्न पदार्थ की उपादानता का जो निषेध करता है, उसी निषेध को सूत्राकार ने सूत्रा में 'साक्षात्' पद के विन्यास से किया है। श्रुति में आत्मसम्बन्धिनी कृति होने के कारण से भी ब्रह्म, निमित्त और उपादान दोनों कारण हो सकता है। इसी पक्ष को वृत्तिकार ने श्रुति के आधर पर प्रस्तुत किया है कि– 'उसने स्वयं को सृष्टिरूप से निर्माण किया' इस आत्मसम्बन्धिनी कृति में श्रुति में आत्मा को कर्मकर्तृत्व रूप से व्यपदेश किया गया है, जिससे आत्मा ही जगत् की प्रकृति (उपादान) है, ऐसा सिद्ध होता है।'

आत्मसम्बध्निी कृति के द्वारा ब्रह्म को जगत् की उपादनता सिद्ध करने पर पूर्वपक्ष सन्देह प्रस्तुत करता है कि 'कर्तृत्वरूप से पूर्वसिद्ध का साध्यरूप से क्रियामाणत्व की उपन्नता कैसे होगी?'

पूर्वपक्ष का आशय यह है कि श्रुति ने जो कहा है कि परमात्मा ने स्वयं का सर्जन किया, वहाँ सकर्तृक और स्वकर्मक क्रिया प्रतीत होती है, किन्तु किसी क्रिया के कर्त्तृत्व और कर्मत्व दोनों एक पदार्थ में नहीं रह सकते, क्योंकि 'कर्तृत्व' धर्म सिद्ध होता है तथा 'कर्मत्व' धर्म साध्य होता है। अतः दोनों धर्मों का परस्पर विरोध है।

इसी विरुद्धभाव को भाष्य रत्न प्रभाभाष्यकार ने कहा है कि 'आत्मा से सम्बन्ध रखने वाली कृति आत्मकृति है। कृति के प्रति आत्मा का सम्बन्ध तो विषयत्वरूप तथा आश्रयत्वरूप है अर्थात् आत्मा कृति का विषय और आश्रय है। सिद्ध पदार्थ कृति का आश्रय होता है और विषय साध्य होता है, इसलिए एक ही आत्मा कृति का आश्रय और विषय है, यह विरुद्ध है।'

पूर्वपक्ष के पूर्वसिद्ध कर्तृत्व तथा साध्यरूप कर्मत्व के एकाश्रयरूप दोष का परिहार करते हुए सिद्धान्तपक्ष कहता है कि 'परिणाम के बल से परस्पर विरुद्ध धर्मो का समावेश होता है। कूटस्थ नित्य सिद्ध ब्रह्म का अविद्यावशात् परिणामोत्पत्ति होती है।'

यहाँ यह शंका हो सकती है कि आत्मा कूटस्थ, अचल, अविकार है, ऐसा श्रुति से प्रतिपादित है, तो आत्मा का परिणाम कैसे स्वीकार किया जा सकता है। यह युक्त नहीं है, क्योंकि श्रुति में विकार मिथ्या कहा गया है, इसलिए

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

विकार के मिथ्या होने से आत्मा को निर्विकार कहने वाली श्रुतियों से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि परिणामशब्द यहाँ विवर्तपरक है।

उक्त शंका के निवारण में रत्नप्रभाकार ने कहा है कि 'इस सूत्रा में परिणामशब्द कार्यमात्रा वाचक है, सत्य कार्यात्मक परिणाम वाचक नहीं है, क्योंकि 'तदनन्यत्वम्' इत्यादि से विवर्तवाद कहा जाने वाला है।''

वेदान्तियों के अनुसार– स्वप्न में स्वशिरश्छेदनादि के समान विरुद्धरूप से प्रतीयमान आरोपित धर्मों का कोई विरोध नहीं होता है। एक ही ब्रह्म सद्रूपेण सिद्ध (कर्ता) है और अनिर्वचनीय परिणामत्वेन साध्य (कर्म) होता है। जैसे– अरजत में रजत का आरोप होता है, वैसे ही अभिन्न में भेद का आरोप।

वृत्तिकार ने 'परिणामात्' इस सूत्रांश को एक पृथक् सूत्रा मानकर व्याख्यायित किया है तथा उस व्याख्या के बल से तथा श्रुति के आधर पर पुनः जगत् की प्रकृति अर्थात् उपादानता को ब्रह्म में पर्यवसित किया है। तद्यथा– इस हेतु से भी ब्रह्म प्रकृति है क्योंकि ''ब्रह्म से ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सब पदार्थ हुआ'' इत्यादि से श्रुति ब्रह्म का ही परिणामत्वेन कथन करती है' ।

वृत्तिकार का तात्पर्य है कि 'सच्च त्यच्याभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च' – इस श्रुति में प्रतिपादित 'सत्' और 'त्यत्' दोनों ब्रह्म के रूप हैं। सत् प्रत्यक्ष भूतत्राय पृथिवी, जल और तेज, त्यत्– परोक्ष भूतद्वय वायु और आकाश, निरुक्त यह ऐसा, ऐसे निवर्चन के योग्य घट आदि तथा अनिरुक्त अनिर्वचनीय है। इस श्रुति में 'सत्' तथा 'त्यत्' दोनों को ब्रह्म रूप नहीं कहा जाता यदि ब्रह्म 'सत्' और 'त्यत्' का उपादानकारण नहीं होता। पफलतः भूतरूपेण परिणत (विवर्तित) होने के कारण ब्रह्म ही भूत वर्ग की प्रकृति (उपादानकारण) होता है। एवच 'तदात्मानं स्वयमकुरुत' यहाँ कर्मत्व हेतु उपादानता और कर्तृत्व हेतु निमित्तकारणता का साध्क है।

वृत्तिकार पुनः एक अन्य श्रुतिपरक हेतु को उपस्थित कर ब्रह्म को प्रकृति (उपादानकारण) सिद्ध करते हुए कहते हैं कि 'वेदान्त अर्थात् उपनिषद् में यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः (मु. 1.1.6) योनि शब्द का पाठ मिलता है, तथा लोक व्यवहार में 'पृथिवी योनिरोषध्विनस्पतीनाम्'– जैसे वाक्य योनि शब्द को उपादान परक सिद्ध करता है, अतः ब्रह्म ही जगत् प्रपच का उपादान कारण है'।

ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिकावृत्ति ने भी श्रुति के योनिघटक शब्द को आधर मानते हुए तथा योनि पद को उपादान (प्रकृति) परकसिद्ध करते हुए ब्रह्म को ही जगत् की प्रकृति (उपादान) तथा निमित्त दोनों कारण माना है। तद्यथा– 'यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः' इस श्रुति वाक्य में आत्मा को प्रकृतिवाचक योनिशब्द से कहा गया है। इसलिए ब्रह्म का उपादानत्व तथा कृतिमत्व दोनों ही सिद्ध हो जाते है'। एस.एन. दासगुप्त ने भी भारतीय दर्शन के इतिहास में कार्यकारणवाद की चर्चा करते हुए ब्रह्म को ही उपादान तथा निमत्त दोनों कारणों को एकत्रित कर ब्रह्म को सामान्य कारण में स्थापित करते हुए कहा है कि 'वेदान्त के इन सारे मतों से एक बात स्पष्ट है कि वेदान्त–दर्शन के अनुसार ब्रह्म ही अपरिवर्तनीय, शाश्वत आदि कारण है। उसके अनन्तर अन्य सभी कार्य, प्रपंच, क्षणिक, अनिवर्चनीय माया मात्रा है।'

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वस्तुतः किसी तत्त्व को प्रकृति कहने पर यह स्वतः सिद्ध है कि उस तत्त्व की अन्य विकृतियाँ होती है। विकृति की अपेक्षा किए बिना 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग ही नहीं हो सकता, 'प्रकृति' और 'विकृति' शब्द परस्पर सापेक्ष हैं। इस प्रकार जब वृत्तिकार ब्रह्म को जगत् की प्रकृति मानते हैं, तो स्पष्ट है कि वे जगत् को ब्रह्म की विकृति मानते है।

यह भी सत्य है कि जगत्प्रपच की प्रकृति ब्रह्म है और इसको सिद्ध करने में वृत्तिकार केवल व केवल श्रुति को स्वीकार करते हैं, न कि विशुद्ध तार्किक प्रवर्तना को।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. किं ब्रह्म निमित्तकारणमेव? उतोपादानकारणं निमित्तं च? इति संशयः। वृत्ति– 1.4.23
2. 'स ईक्षत' इत्यादौ ईक्षितृत्वश्रवणात् निमित्तकारणमेव ब्रह्ममेति। वृत्ति. 1.4.23
3. प्र.उ. 6.3
4. वही, 6.4
5. पारिशेष्याद् ब्रह्मणोर्{न्यदुपादानकारणमशु(यादिगुणकं स्मृतिप्रसि(मभ्युपगन्तव्यम्।
   ब्रह्मकारणत्व–श्रुतेर्निमित्तत्वमात्रो पर्यवसानादिति। ब्र. सूं. शां. भा. 1.4.23
6. प्रसक्तप्रतिषेधत् अन्यत्राप्रसघैंः परिशेषः। न्या.भा. 1.1.5
7. ब्रह्मोपादानत्वस्य प्रसक्तस्य प्रतिषेध्
   `{न्यत्राप्रसघैंत्सांख्यस्मृतिप्रसि(मानुमानिकं प्रधनं शिष्यत इति। भा. 1.4.23
8. प्रकृतिश्च–उपादानकारणं च ब्रह्माभ्युपगन्तव्यम्, न केवलं निमित्तकारणमेव, कस्मात्?
   प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधः तस्मात्, प्रतिज्ञादृष्टान्तानुप रोधत्। वृत्ति. 1.4.23
9. प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधत्। ब्र.सू. 1.4.23

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

10. 'उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' छा.उ. 6.1.2
11. यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्। छा.उ. 6.1.4
12. तत्रा चैकेन विज्ञातेन सर्वमन्यदविज्ञातमपि विज्ञातं भवतीति प्रतीयते। तच्चोपादानकारणविज्ञाने सर्वत्राविज्ञानं सम्भवत्युपादान कारणाव्यतिरेकात्कार्यस्य। निमित्तकारणाव्यतिरेकस्तु कार्यस्य नास्ति, लोके लक्ष्णः प्रासादव्यतिरेकदर्शनात्। ब्र.सू.शा.भा. 1.4.23
13. प्रतिज्ञादृष्टान्त वाक्ययो स्त्वद्वैतपरत्वादु पादानकारणात्म कत्वाच्चोपादेयस्य कार्यजातस्योपादानज्ञानेन तज्ज्ञानोपपत्तेः। निमित्तकारणं तु कार्यादत्यन्तभिन्नमिति न तज्ज्ञाने कार्यज्ञानं भवति। अतो ब्रह्मोपादानकारणं जगतः। भा. 1.4.23
14. न च ब्रह्मणे{न्यन्निमित्तकारण मित्यपि युक्तम्, प्रतिज्ञादृष्टान्तोपरोधदेव। वृत्ति 1.4.23
15. यदुक्तं ईक्षितृत्वं कुलालादिषु निमित्तकारणेषु दृष्टमिति तन्न–आगमगम्यत्वादस्यार्थस्य। आगमश्चेक्षितुरपि प्रकृतित्वं प्रतिपादयतीत्यवोचाम्। वृत्ति. 1.4.23
16. तै. उ. 3.1
17. पा. सू. 1.4.30
18. वही, 2.3.28
19. किच, अभिध्योपदेशात् उपादानं निमित्तं च ब्रह्म। 'स ईक्षत' 'बहु स्यां प्रजायेय' इतीक्षणाभिध्यानकर्तृत्वावगमात्, 'बहु स्याम्' इति प्रत्यगात्मविषयबहुभवनाभिध्यानस्य...प्रकृतित्वमपि गम्यते। वृत्ति. 1.4.24.
20. अभिध्योपदेशाच्च। ब्र.सू. 1.4.24
21. अनागतेच्छासघङ्कलपो{भिध्या। एतया खलु स्वातन्त्रयलक्षणेन कर्तृत्वेन निमित्तत्वं दर्शतिम्। बहुस्यामिति च सवविषयतयोपादानत्वमुक्तम्। भा. 1.4.24
22. साक्षात् ब्रह्मैव कारणमुपादाय उभयोः– प्रभवप्रलयोः नानात्। सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति ;छा. 1.4.1द्ध। वृत्ति. 1.4.25
23. या{ यस्मात्प्रभवति यस्मिश्च प्रलीयते, तत्तस्योपादानं प्रसि(म्। यथा– व्रीहियवादीनां पृथिवी। ब्र.सू.शां. भा. 1.4.25
24. छा.उ. 1.9.1
25. साक्षाच्चोभयाम्नात्। ब्र.सू. 1.4.25 तदात्ममानं स्वयमकुरुत' इति आत्मनः कर्मकर्तृत्वव्यपदेशादात्मैव जगत्प्रकृतिः। वृत्ति. 1.4.26
26. अत्रा सूत्रो परिणामशब्दः कार्यमात्रापरः, न तु सतकार्यात्मक परिणामपरः तदनन्यत्वमिति विवर्तवादस्य वदयमाणत्वात्। भा.र.प्र. 1.4.26
27. आत्मकृतेः परिणामात्। ब्र.सू. 1.4.26
28. इतश्च ब्रह्मैव प्रकृतिः, 'सच्च त्यच्चाभवत् इत्यादौ ब्रह्मणो{पि परिणामः श्रूयते। वृत्ति. 1.4.26
29. तै.उ. 2.6
30. तै.आ. 2.7
31. इतश्च ब्रह्मैव प्रकृतिः, यत्कारणं योनिरित्यपि पठ्यते वेदान्तेषु 'यदभूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः' ;मु. 1.1. 6द्ध इति। 'पृथिवी योनिरोषध्विनस्पतीनाम्' इति योनिशब्दः उपादानकारणवाची दृष्टः। वृत्ति–1.4. 27
32. दासगुप्त, एस.एन., भा.द.इ., भाग–1, पृ. 435

*****